असम्भव कुछ नहीं
सब सम्भव है
में से कुछ
अन्मोल मोती

प्रकाशक व मिलने का पताः
भगवान सत्य श्री टाट वाले बाबाजी महाराज
का स्थान
बिरला घाट, हरिद्वार, यू.पी.

इस छोटी पुस्तिका का प्रथम संस्करण—1992
द्वितीय संस्करण—1995
तृतीय संस्करण—1997
चतुर्थ संस्करण–2000
मूल्य—श्रद्धा व प्रेम

मुद्रक
एवरेस्ट प्रेस
ई 49/8 ओखला इन्डस्ट्रीयल एरिया फेस-II
नई दिल्ली
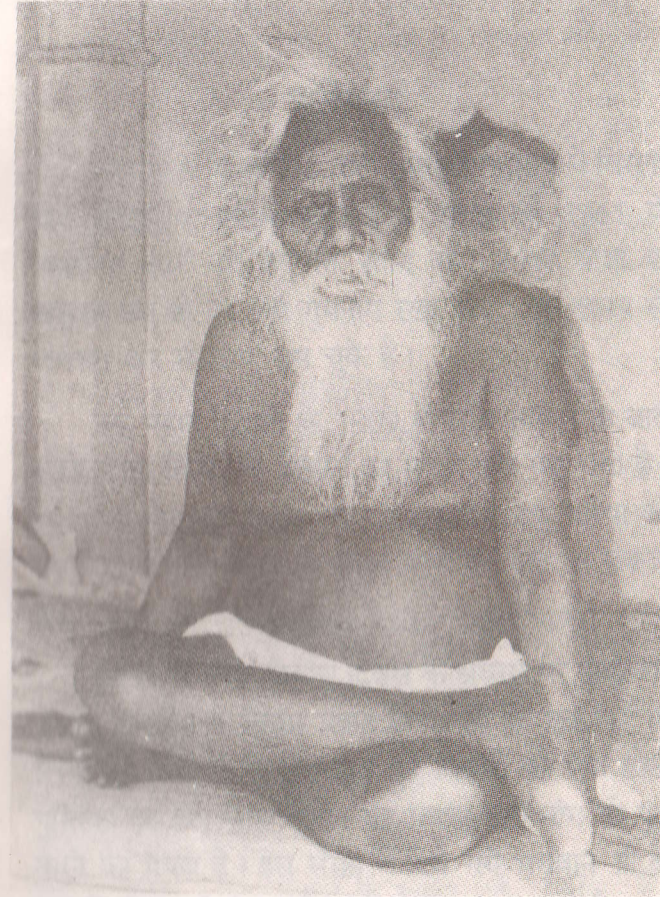
भगवान सत्य श्री टाट वाले बाबाजी महाराज का पार्थिव शरीर

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरु देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं बह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

भूमिका

भगवान सत्य श्री टाट वाले बाबाजी महाराज ने बिरला घाट हरिद्वार से अपने अनुभव के संग्रह को 1961 में प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की। उनकी आज्ञा के अनुसार उन श्री का नाम गुमनाम रखा गया। उस समय से लगभग दस संस्करण छप चुके हैं।

उस महान विभूति के 1989 में शरीर त्यागने के बाद उनके व्यक्त किये गये विचारों का महत्व और बढ़ गया है। इस ग्रन्थ का वर्णन वेदान्त की व्याख्या व दैनिक चरिया की राह दिखाने वाले संसार के प्रमुख ग्रन्थों में किया जा सकता है।

1991 में उनके निर्वाण दिवस के अवसर पर संयोजित वेदान्त समारोह में विचार प्रकट किये गये कि एक वर्ग के लिये इस ग्रन्थ में से कुछ चुने हुए विचारों को एक छोटी पुस्तिका का रूप दिया जाये। यह प्रयास उसी मांग को पूरा करने का प्रयत्न है। इस संग्रह में दिये गये भगवान श्री के कथनों को वह ही संख्या दी गई है जो कि मूल ग्रन्थ में है।

भगवान श्री के दरबार में आने वाले ब्रह्मज्ञानियों, सन्तों, महामण्डलेश्वरों, उनके भक्तों व साधारण जनों को जो मान

व प्रेम भगवान श्री से मिलता था उसको याद करके अब भी सब गदगद हो जाते हैं। उनकी महिमा अदभुत् थी। उनके दरबार में आते ही अनुभव होता था कि इस मायावी संसार में यदि आपका अपना कोई है तो बस एक वह ही— वह जो आपसे भिन्न नहीं, वह जो आपका निज स्वरूप हैं, वह जो सत्य, चित्त, आनन्द हैं। बिरला घाट में जहां वह समाधिष्ट हैं, उनकी छबी अब भी निरन्तर सत्संग व भगवत् कीर्तन में झलकती है।

उनके भक्तों का तो हाल ही क्या कहिये। बेखुदी में गातेः

ज्यों ही होये दरस तिहारा

ज्यों ही होये दरस तिहारा
चल निकले असुअन की धारा,
प्रेम से रोऊं, प्रेम से गाऊं,
गात गात होऊं बस मतवारा।

मेरे बाबा, मेरे टाट वाले,
कितना है प्यारा नाम तिहारा,
मिले तेरे नामों की दुनिया,
मैं बस फिर होऊँ बलिहारा।

तेरी आंखों की मस्ती है प्यारी,
तेरे लबों की वाणी है न्यारी,
तेरी दुनिया प्यारी, तू है प्यारा,
तेरे प्रेमवश मैं सब कुछ ही हारा।

मेरे बाबा, मेरे टाट वाले,
कितना ही मिला है प्रेम तिहारा,
वह प्रेम बेल सींचूं असुअन से,
तेरा ख्याल ही कर दे मतवारा।

मेरे बाबा, मेरे टाट वाले!

और अब जब उनका शरीर नहीं रहा तो भी उनकी मौजूदगी का अनुभव होता ही रहता है। पर फिर भी कभी कभी तो भक्तजन पुकार ही उठते हैंः

तेरे दरस को जी चाहिता है,
मेरे प्रेम के ही सागर, वाह
कितना है अथाह अगाध तू!
तेरे में डूब जाने को जी चाहिता है।

गंगा तट तेरा वह तराना
वहदत के मधुर गीत गाना,
क्या ब्रह्म नेष्ठा, क्या ही उड़ाना,
वहीं समा जाने को जी चाहिता है।

जंगल में वे तेरी मस्ती,
ऋषि तेरा वेश, ब्रह्म तेरी हस्ती।
उसी प्रेम मुद्रा में तुझे
चूम लेने को जी चाहिता है।

इस पुस्तिका में विचार हैं उस श्रोमणि ब्रह्मज्ञानी के, उस भगवान श्री के जो कभी कभी इस संसार में जन कल्यान हेतु अवतरित होते हैं।

ॐ

१६—वृत्ति तब तक एकान्त नहीं हो सकती, जब तक मन में कभी यह आशा रहे और कभी वह इच्छा। शान्त वह हो सकता है जिसे कोई कर्त्तव्य और आवश्यकता खींच घसीट न रही हो। इसलिए जीने तक की आशा को त्याग कर मन को ब्रह्मानन्द में डाल दो। आज ही से समझ लो कि यह शरीर है ही नहीं और ब्रह्मानन्द के सागर में शंका रहित होकर कूद पड़ो।

३६—जो यह देखता है कि "यह सब कुछ आत्मा है।" वह न मृत्यु को देखता है न रोग को और न दुःख ही को। ऐसा देखने वाला सब वस्तुओं को देखता है और सब प्रकार से सब वस्तुओं को प्राप्त होता है।

४१—भजन करते समय निर्लज्ज चित्त में मकान के, अपने मान, अपनी जान के ध्यान आ जाते हैं। मूर्ख को इतनी समझ नहीं कि ये चीजें चिन्तन योग्य नहीं, चिंतन योग्य तो एक प्रभु है।

४४—भाई! समाधि और मन की एकाग्रता तो तब होगी जब तुम्हारी तरफ से माल, धन, बंगले, मकान पर

मानो हल फिर जाय, स्त्री, पुत्र, वैरी, मित्र पर सुहागा चल जाय, सब साफ हो जाय, राम ही राम का तूफान आ जाय, कोठे दालान सब बहा ले जाए।

४५—जो भी कोई शिव की उपासना करते हैं, वे धनवान हो जाते हैं और लक्ष्मीपति विष्णु के उपासक निर्धन रह जाते हैं। अभिप्राय यह है कि जिन लोगों के हृदय में शिव रूप त्याग और वैराग बसा है। ऐश्वर्य, धन, सौभाग्य उनके पास स्वयं आते हैं और जिन लोगों के अन्तःकरण लक्ष्मी धन दौलत की लाग में मोहित हैं वे दारिद्रय के पात्र रहते हैं।

४७—आँखों वाला केवल वही है, जिसकी दृष्टि जगत को चीर कर पदार्थों की स्थिरता पर न जम कर और लोगों की धमकी और प्रशंसा को काट कर एक तत्व पर जमी रहती है।

५०—मुझ से पहले न जगत था यह,
मैं ही संसार बनाता हूं।
इन नील उदधि के अन्तर से,
मैं नभ में सूर्य सजाता हूं।
अपने कटाक्ष संकेतों पर,
मैं शशि को सदा नचाता हूं।
अपने इस अद्भुत कौशल की,
मैं तुम को बात बताता हूं।

५५—जब हम दूसरों पर निर्भर करते हैं, दूसरों के भरोसे करते हैं तो हम अपनी आत्मिक शक्ति खो देते हैं। जब हम अपनी आत्मा में विश्वास करते हैं और आत्मा के अतिरिक्त किसी चीज में विश्वास नहीं करते तब सब सम्पदायें हमारे पास आती हैं।

६०—आंखें बन्द कर लो, दुनियाँ का पांचवा भाग समाप्त। कान बन्द कर लो, पांचवां हिस्सा और गायब। नाक बन्द करों, पांचवां हिस्सा और गुप्त। अपनी किसी इन्द्रिय से काम न लो तो कहीं कोई दुनियां नहीं रह जायगी।

६४—वेदान्त निराशावाद नहीं है वह तो आशावाद का सर्वोच्च शिखर है।

६५—किसी भी प्रसंग को मन में लाकर हर्ष शोक के वशीभूत मत हो जाना। मैं अजर हूं, अमर हूं, मेरा जन्म नहीं, मेरी मृत्यु नहीं, मैं निर्लिप्त आत्मा हूं। यही भाग दृढ़ रीति से हृदय में धारण करके जीवन व्यतीत करना। इसी भाव की निरन्तर सेवा करना और उसी में तल्लीन रहना।

७६—यह समझ लेने वाला पुरुष आनन्द के सिवाय दूसरा कुछ है ही नहीं। किसी भी बात और किसी भी घटना से नहीं डरता। ऐसा जान चुकने वाला पुरुष पाप पुण्यों को छोड़कर सदा आत्मा को याद करने लगता है और किये हुए कर्म को भी आत्म रूप ही जान लेता है।

१०५—जब अपने व्यक्तित्व के विषय में सोचना नितान्त त्याग दिया जाय तो इसके समान कोई सुख नहीं, इसके समान कोई अवस्था नहीं।

११७—यदि हम लोग बाहर से प्राप्त हुई निन्दास्तुति में विश्वास न करने की शक्ति अपने भीतर उपार्जित कर लें, यदि उतना ही विजय प्राप्त करना हमारा उद्देश्य न हो, यदि हम कार्य करने के ज्वर से मुक्त हो जाएं, यदि सत्य को उपदेश की अपेक्षा स्वयं सत्य बनने में हम अपनी शक्ति अधिक लगाएं तो ईश्वरों के ईश्वर हम हो सकते हैं।

११८—संसार में केवल एक ही रोग है और एक ही दवा भी है। "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" इस वेदान्तिक नियम का भंग ही सारी व्याधियों की जड़ है जो कभी एक दुःख का रूप धारण करती है और कभी दूसरे का। और इसकी औषधि है अपने वास्तविक ईश्वरत्व को प्राप्त करना।

१२७—जिस क्षण तुम इन सांसारिक पदार्थों में सुख ढूंढना छोड़ दोगे और स्वाधीन हो जाओगे, अपने भीतर के परमेश्वर को अनुभव करोगे, उसी क्षण तुम्हें ईश्वर के पास नहीं जाना पड़ेगा पर ईश्वर स्वयं तुम्हारे पास आवेगा। यही दैवी विधान है।

१२८—यदि क्रोधी तुम्हें शाप दे और तुम कुछ न बोलो तो उसका शाप आशीर्वाद के रूप में बदल जायगा।

१३२—जब हम ईश्वर के प्रतिकूल हो जाते हैं तब हमें कोई मार्ग नहीं दीखता और हमें घोर दुःख उठाना पड़ता है। जब हम ईश्वर में तन्मय होते हैं तब ठीक उपाय, ठीक प्रवृत्ति, ठीक प्रवाह, आप ही आप हमारे हृदय में उठते हैं।

१४३—जिस समय जगत के सारे पदार्थ चित्र या चिन्ह मात्र बन जाते हैं. जिस समय हम पदार्थों को पदार्थ भाव से नहीं देखते बल्कि उनके पीछे उनके आधार रूप निर्विकार आत्मा देखते हैं, जिस समय हमारी दृष्टि इस या उस पदार्थ पर पात होते ही, उसमें हमारा हृदयनेत्र शुद्ध स्वरूप परमात्मा को देखता है। जिस समय ऐसी स्थिति प्राप्त होती है तब समस्त विश्व के साथ एकता अभेदता अनुभव करना मनुष्य के लिये सुगम हो जाता है। यही ईसा दशा है। इस ईसा की अवस्था में कुछ काल रहने के बाद दूसरी इससे भी उच्चतर स्थिति आती है। तब हम परमात्मा में पूर्णतया लीन हो जाते हैं। इसको हम निर्वाण या समाधि अवस्था कहते हैं।

१५१—न मैं हूं, न जगत है, न पृथ्वी है, तो शोक किसका करना?

१७०—जिस क्षण तुम सफलता की ओर पीठ कर लोगे, जिस क्षण परिणामों की चिन्ता छोड़ दोगे, जिस क्षण तुम अपने वर्तमान कार्य में अपनी सारी शक्ति केन्द्रित कर

दोगे, उसी क्षण सफलता तुम पर न्योछावर हो जायगी। बल्कि तुम्हारे पीछे-पीछे दौड़ेगी। इसीलिये सफलता के पीछे मत भागो। सफलता को अपना ध्येय मत बनाओ। और तभी सफलता आपकी दासी बन जायगी।

१७१—हमीं हैं खुद खदा यारो,
नहीं पैदा हमारी है।।
हमीं जिन्दा हमेशा हैं,
न मरना मन करारी है।।
पड़ी वे खौफ की कफनी,
न है माला न है जपनी।।
मिटी तनि ताप की तपनी,
खुली अनुभव की वारी है।।

१९२—यह सर्वश्रेष्ठ सत्य है कि "आप परमेश्वर हो" "प्रभुओं के प्रभु हो" यह समझो, यही अनुभव करो और फिर आपको कोई भी हानि नहीं पहुंचा सकता। आप को कोई भी चोट नहीं पहुंचा सकता। आप प्रभुओं के प्रभु हो।

२०५—मैंने कभी किया क्या काम।
मैं तो परब्रह्म निष्काम।
मैं हूँ अद्वितीय सर्वोच्च
मेरा कहां बचा कर्त्तव्य।।

मैं हूं ईश्वर सब का प्राण।
रह बस मस्त शांत दिन रैन।।
अपने को तू ईश्वर जान।
भ्रम को दूर तोड़कर डाल।।
छोड़ काम की चिन्ता मुक्त।
यह ले जान सत्य ज्ञातव्य।।
मैं हूं उनका आश्रय स्थान।
स्वयं मैं ओंकार भगवान।।
आज न मेरे हर्ष को कोई सकता टोक।
आज न मेरे मार्ग को कोई सकता रोक।।

२२१—अपने आप में सब चीजों को और सब चीजों में अपने आप को देखना ही असली आँख वाला होना है।

२२६—यदि तुम शरीर और मन से ऊपर उठ जाओ तो चिन्ता और भय से छूट जाते हो।

२५२—सबसे अधिक पाप है, अपने को दुर्बल समझना। तुम सबसे बड़े हो और कोई नहीं है।

२६८—अन्य सभी चिन्तायें छोड़कर सर्वान्तः- करण से ईश्वर की दिन रात उपासना करनी चाहिये। सुख दुःख, लाभ क्षति इन सबों को त्यागकर दिन रात ईश्वर की उपासना करो। एक क्षण भी व्यर्थ मत जाने दो।

२६९—तुम अपने ऊपर अविश्वास कभी मत करो, तुम इस जगत में सब कुछ कर सकते हो। कभी भी अपने को दुर्बल मत समझो। सभी शक्तियां तुम्हारे भीतर विद्यमान हैं।

२७०—स्वप्न, स्वप्नद्रष्टा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। इसी तरह जाग्रत भी जाग्रत द्रष्टा के सिवाय कुछ नहीं है।

२७४—जो लोग शरीर से दुर्बल हैं, वे आत्म-साक्षात्कार के अयोग्य हैं। मन पर एक बार अधिकार प्राप्त हो जाने पर देह सबल रहे या सूख जाय इससे कुछ नहीं होता। वास्तविक बात यह है शरीर के स्वस्थ न रहने पर कोई आत्मज्ञान का अधिकारी नहीं बन सकता। शरीर में जरा भी त्रुटि रहने पर जीव सिद्ध नहीं बन सकता। जब मन सहित षट् इन्द्रियों का अभाव हो जाय तब केवल शान्ति को प्राप्त होता है।

२७६—जो मनुष्य निरन्तर "मैं मुक्त हूं" ऐसी भावना रखता है वह मुक्त ही है और "मैं बंधा हुआ हूं" ऐसी भावना रखने वाला बंधा हुआ है।

२८०—मैं निर्लिप्त आत्मा हूं। मेरा जन्म नहीं, मृत्यु नहीं, मैं अजर अमर हूं, मैं चिदानन्द आत्मा स्वरूप हूं। एक बार ऐसे भाव में मन को लगा लेगा तो दुःख और कष्ट के समय में अपने आप ही उपरोक्त भाव जाग्रत हो जायेंगे।

२८२—परहित के लिये थोड़ा सा काम करने से भीतर की शक्तियां जागृत होती हैं। दूसरे के कल्याण करने के विचार मात्र से हृदय में एक सिंह समान बल आ जाता है।

२९४—किसी से मत डरो, किसी से कोई आशा न करो, अपना कोई उत्तरदायित्व न समझो। डरो मत, तुम मुक्त हो।

२९५—जानकर या अनजान में जो कोई रात दिन यह सोचा करता है कि "मैं नित्य हूं, मैं शुद्ध हूं, बुद्ध हूं, मैं मुक्तात्मा हूं" वह समय पाकर अवश्य ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेता है।

२९८—समाधि में जगत शब्दमय है यह बात सबसे पहले समझ में आती हैं। उसके बाद गम्भीर ओंकर की ध्वनि में समा जाता है। उसके बाद वह ध्वनि भी नहीं सुनाई पड़ती। ध्वनि है या नहीं इसकी खबर नहीं रहती। इसे अनाहद नाद कहते हैं। अन्त में मन ब्रह्म में लीन हो जाता है। और चारों तरफ शान्ति फैल जाती है। मन जब ब्रह्म में लीन होने वाला स्वभाव का होता है तभी वह क्रमशः एक के बाद एक विविध अवस्थाओं में होकर पार करता हुआ अन्त में निर्विकल्प पहुंचता है।

३००—भक्ति मार्ग शिथिल कर्म है। इससे फल प्राप्ति में थोड़ा विलम्ब होता है। किन्तु यह है सहज और साध्य।

३१७—यह जगत सब आत्ममय है भेद अभेद इसमें कुछ नहीं है।

३४९—मैं सर्वशक्तिमान परमेश्वर हूं, विश्व (ब्रह्माण्ड) का शासक हूं प्रभुओं का प्रभु हूं, देवों का देव हूं, और संसार के भूतों का अध्यक्ष और अधिष्ठाता हूं। ऐसा निश्चय करो फिर तुम्हें कोई हानि या क्षति नहीं पहुंचा सकेगा।

३८३—अपनी वर्तमान अवस्था को, वह चाहे जैसी हो उसी को महिमान्वित करने से, अपनी सब वर्तमान स्थिति को सर्वोच्च मानने से ही तुम्हारे हृदय में आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान अनायास उदय होने लगेगा। आत्म साक्षात्कार के पीछे दौड़ने से जैसे वह कहीं दूर की चीज हो आत्मज्ञान नहीं होता।

३९५—जाके मन में अटक है,
बाको अटक यहां।
जाके मन में अटक ना,
वाको अटक कहां।।
किंचित मात्र द्वैत नहीं हुआ,
ना कोई जन्मा ना कोई मरा।
न मैं हूं, न तू है, न है यह पसारा,
यही ब्रह्म विद्या यही ज्ञान सारा।।
ना ही मैं हूं ना ही जगत है,
नभ सम शून्य सभी है।

एक आत्मा सर्वत्र पूर्ण है,
कुछ भी अन्य यहीं है।।

४०२—सफलता की खोज बन्द कर दो। जब ऐसा करोगे, सफलता तुम्हें अवश्य खोजती फिरेगी।

४०९—वास्तविक शिक्षा तो उस समय प्रारम्भ होती है, जब मनुष्य सभी प्रकार की बाह्य सहायताओं से मुंह मोड़कर अपने अन्तर के अनन्त स्त्रोत की ओर अग्रसर होता है।

४१३—या तो तुम जगत के प्रभु बनो, नहीं तो जगत तुम्हारे ऊपर प्रभुत्व जमा लेगा।

४३४—जब तुम आत्मा से विमुख होगे सब पदार्थ तुम्हें छोड़ जायेंगे। जब तुमने अपने अन्तरात्मा का दृढ़ निश्चय से आश्रय कर लिया तब सारा संसार कुत्ते के समान तुम्हारे पैर चाटने की इच्छा करेगा। संसार के पीछे मत दौड़ो।

४४०—परमात्मा पर विश्वास रखकर अपनी जीवन डोरी उसके चरणों में सदा के लिये बांध दो, फिर निर्भयता तो तुम्हारे चरणों की दासी बन जायगी।

४७०—इस शरीर को अपने पैरों से कुचल डालो, यह शरीर मैं नहीं हूं यह अनुभव करो।

४७३—अपने शरीर के रोम रोम में ओऽम् का उच्चारण

करो। पहले धीरे धीरे प्रारम्भ करो, ध्वनि पहले गले से निकलती है, फिर वक्षस्थल से फिर और अधिक नीचे से, यहां तक कि रीढ़ की हड्डी के नीचे से निकलने लगती है बस विद्युत के धक्के से तुरन्त सुषुमा नाड़ी खुलती है। रोग मात्र के साथ कीटाणु भाग खड़े होते हैं।

४८१—तुम्हारे चित्त में ऐसी शिरका (शराब) होनी चाहिए कि उसमें पड़ते ही दुनियाँ गल जाय। विश्व के गलते रहते रहने पर भी आत्मज्ञान की सार्वभौमिक धारा में भी उसकी ज्योति सदा पारदर्शक रहती है। ठीक तरह से विचार करो, फिर चाहे आसमान गिरे या पृथ्वी फटे, तुम्हारी उन्नति का संगीतमय पथ बराबर खुला ही रहेगा। न कोई शत्रु कभी तुम्हें देखेगा और तुम उस स्थिति में शत्रु का ख्याल तक नहीं कर सकते।

४८६—पापी और दुष्ट मनुष्य ही बाहर पाप देख पाता है। किन्तु साधु मनुष्य को बोध नहीं होता। अत्यन्त असाधु पुरुष इस जगत को नरक स्वरूप देखते हैं। मध्यम श्रेणी के लोग इसे स्वर्ग स्वरूप देखते हैं और जो पूर्ण सिद्ध पुरुष हैं वे साक्षात भगवान के रूप में ही देखते हैं।

४८७—समस्त ब्रह्माण्ड एक चित्र के सामन है। सभी वस्तुओं में ईश्वर बुद्धि करो। प्रत्येक कार्य में, प्रत्येक भाव में, प्रत्येक चिन्ता में ईश्वर पहले ही से स्थित है इसी

प्रकार समझ कर हमें अवश्य ही कार्य करते जाना होगा। इसी प्रकार करने पर कर्मफल तुमको लगेगा ही नहीं।

४९४—यदि हम जान पायें कि इस आत्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, और जो कुछ है सब स्वप्न मात्र है, तो इस जगत का दुःख दारिद्रय, पाप-पुण्य कुछ भी हमको चंचल कर नहीं सकेगा।

४९५—आप से पृथक ईश्वर नहीं है, आप से यथार्थतः जो आप हो उससे श्रेष्ठतर ईश्वर कोई नहीं है सब ईश्वर अथवा देवता आपकी तुलना में क्षुद्रतर हैं।

५१८—जैसे बालक आपनी परछाईं विषे वैताल कल्पितकर भय को पाता है। परमार्थ से कुछ द्वैत नहीं सब संकल्प रचना है।

५१९—जैसे स्वप्न विषे संकल्प करके दुःखी सुखी होता है तैसे जाग्रत में भी संकल्प से ही सुखी दःुखी होता है।

५२९—भय दूसरे से होता है। मनुष्य को चाहे भगवत् दर्शन हो जाय परन्तु तब तक वह अपने आपसे उसे (भगवत् ज्ञान या ईश्वर परमात्मा को) भिन्न जानता है भयभीत रहता है। श्रुति का अभिप्राय यह है कि अपने आप से किसी को भय नहीं होता।

५३०—श्लोकोर्द्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्त ग्रन्थ कोटिभिः

ब्रहम सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रहमैव नापरः।

५३१—संसार में जितनी वस्तुयें प्रत्यक्ष में घबराने वाली मालूम होती हैं वास्तव में तेरी प्रफुल्लता और आनन्द के लिये प्रकृति के हाथ ने तैयार की हैं। उल्टा डरने से क्या लाभ? तेरी ही मूर्खता तुझे चक्कर में डालती है नहीं तो तुझे कोई नीचा दिखाने वाला नहीं। यह पक्का निश्चय रख कि संसार तेरे किसी शतरु का बनाया हुआ नहीं वरन तेरे ही आत्म देव का सारा विकास है। संसार का कोई भी पदार्थ तुझे वास्तव में दुःख नहीं दे सकता है।

५४७—जिसमें तू डरता है वह तू ही है। जिससे भयभीत होता है वह तू ही है। अपने ही तेज और प्रताप से भयभीत मत हो। सब तेरे ही प्रकाश हैं। उससे मत डर, निधड़क हो जा।

५५५—यदि स्वप्न और सुषुप्ति के अनुभव को भी जाग कर कह देते हो कि यह झूठ है तो जाग्रत के अनुभव को भी झूठ कह देना आवश्यक है क्योंकि स्वप्न और सुषुप्ति के विश्वास से यह भी उड़ जाता है।

५५६—यदि तू उसके अतिरिक्त है उसकी ओर से आँख सी ले (बन्द कर ले)।

५५९—राम रहीम सब तेरे बन्दे (सेवक) हैं तुझसे बड़ा

कोई नहीं है। इस लिए तू अपने आप को ईश्वर निश्चय कर।

५६१—उच्च स्वर से कहता हूं कि मैं खुदा हूँ और तेजों का तेज स्वरूप आत्मा इस सूर्य और चन्द्र को प्रकाश दान करता है वह मैं हूं।

५६९—न नक्शे दुई दिल से मिटा दूं तो सही।
मखलूक को खालिक न बना दूं तो सही।।
कतरा न अनल बहर कहे तो कहना।
आविद से न मादूद बनादू तो सही।।

५७८—यार को हमने जा बजा देखा।
कहीं बंदा कहीं खुदा देखा।।
सूरते गुल में खिलखिला के हंसा।
शक्ले बुलबुल में चहचहा देखा।।
कहीं है बादशाह-तख्तो नशीं।
कही कासा लिये गदा देखा।।
कही आविद बना कहीं जाहिद।
कहीं रिंदों का पेशवा देखा।।
करके दावा कहीं अनलहक का।
बरसरे-दार वह खिंचा देखा।।
देखता आप है सुने है आप।
न कोई उसके मासिवा देखा।।

ब्रहम सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रहमैव नापरः।

५३१—संसार में जितनी वस्तुयें प्रत्यक्ष में घबराने वाली मालूम होती हैं वास्तव में तेरी प्रफुल्लता और आनन्द के लिये प्रकृति के हाथ ने तैयार की हैं। उल्टा डरने से क्या लाभ? तेरी ही मूर्खता तुझे चक्कर में डालती है नहीं तो तुझे कोई नीचा दिखाने वाला नहीं। यह पक्का निश्चय रख कि संसार तेरे किसी शतरु का बनाया हुआ नहीं वरन तेरे ही आत्म देव का सारा विकास है। संसार का कोई भी पदार्थ तुझे वास्तव में दुःख नहीं दे सकता है।

५४७—जिसमें तू डरता है वह तू ही है। जिससे भयभीत होता है वह तू ही है। अपने ही तेज और प्रताप से भयभीत मत हो। सब तेरे ही प्रकाश हैं। उससे मत डर, निधड़क हो जा।

५५५—यदि स्वप्न और सुषुप्ति के अनुभव को भी जाग कर कह देते हो कि यह झूठ है तो जाग्रत के अनुभव को भी झूठ कह देना आवश्यक है क्योंकि स्वप्न और सुषुप्ति के विश्वास से यह भी उड़ जाता है।

५५६—यदि तू उसके अतिरिक्त है उसकी ओर से आँख सी ले (बन्द कर ले)।

५५९—राम रहीम सब तेरे बन्दे (सेवक) हैं तुझसे बड़ा

कोई नहीं है। इस लिए तू अपने आप को ईश्वर निश्चय कर।

५६१—उच्च स्वर से कहता हूं कि मैं खुदा हूँ और तेजों का तेज स्वरूप आत्मा इस सूर्य और चन्द्र को प्रकाश दान करता है वह मैं हूं।

५६९—न नक्शे दुई दिल से मिटा दूं तो सही।
मखलूक को खालिक न बना दूं तो सही।।
कतरा न अनल बहर कहे तो कहना।
आविद से न मादूद बनादू तो सही।।

५७८—यार को हमने जा बजा देखा।
कहीं बंदा कहीं खुदा देखा।।
सूरते गुल में खिलखिला के हंसा।
शक्ले बुलबुल में चहचहा देखा।।
कहीं है बादशाह-तख्तो नशीं।
कही कासा लिये गदा देखा।।
कही आविद बना कहीं जाहिद।
कहीं रिंदों का पेशवा देखा।।
करके दावा कहीं अनलहक का।
बरसरे-दार वह खिंचा देखा।।
देखता आप है सुने है आप।
न कोई उसके मासिवा देखा।।

बल्कि यह बोलना भी तकल्लुफ है।
हमने उसको सुना है या देखा।

६०६—जैसे स्वप्न विषे जन्म मरण ग्राना जाना देखता है परन्तु मिथ्या है तैसे जाग्रत क्रिया भी सर्व मिथ्या है।

६१६—बिगड़े तब जब होय कुछ बिगड़न वाली शय।
ग्रकाल ग्रछेद्य अभंग को कौन शकस का भय।।
कौन शकस का भय बुद्धि यह जिसने पाई।
तिसके ढिग दिलगीरी, नहीं कदाचित् ग्राई।।

६३३—सोने से पहले जब ग्रांख बन्द होने लगे, दोपहर हो रात्रि हो, तब ग्रपने मन में ऐसा निश्चय करो कि तुम ग्रपने जागने पर वेदान्त की सत्य की साक्षात मूर्ति के रूप में प्रकट होंगे। जब तुम जागो तब ग्रन्य कोई काम करने के पहले ग्रपने ग्रन्तःकरण में पुनः उस संकल्प का चित्र खींचो जो सोने के पहले किया था। जब भी सम्भव हो मन की मन या जोर से ग्रोंम ग्रोंम गाग्रो ग्रौर गुनगुनाग्रो।

६३४—ग्रशुभ का विरोध न करो। सदा शान्त रहो ग्रौर जो कुछ सामने से ग्रावे प्रसन्नता से उसका स्वागत करो।

फिर वह चाहे तुम्हारी इच्छा की धारा के विपरीत ही क्यों न जाये। फिर तुम देखोगे कि प्रत्यक्ष बुराई भलाई में बदल जाती है।

६५०—हमारे वक्षस्थल में 'मैं' का धुन लगा हुग्रा है। उसे परे फेंक दो ग्रौर सारा संसार तुम्हारे सामने नत मस्तक होगा।

६५१—शक्ले इंसां में खुदा था मुझे मालूम न था।
हक से नाहक मैं जुदा था, मुझे मालूम न था।।

६५२—कह रहा है ग्रासमां ये समां कुछ भी नहीं।
रोती है शबनम कि नैरंगे जहाँ कुछ भी नहीं।१।
जिनके महलों में हजारों रंग के फानूस थे।
झाड़ उनकी कब्र पर है ग्रौर निशां कुछ भी नहीं।।२।।

जिनकी नौबत की सदा से गूंजते थे ग्रासमां।
दब बखुद है कब्र में ग्रब हूं न हां कुछ भी नहीं।।३।।

तख्त वालों का पता देते हैं तख्ते गौर के।
खोज मिलता तक नहीं वादे ग्रजां कुछ भी नहीं।।४।।

६७१—समुद्र की तरंगों की ओर देखो, एक भी तरंग समुद्र से पृथक् नहीं है। तब फिर तरंग पृथक् क्यों प्रतीत होता है। नाम रूप ने तरंग की आकृति और हमने जो तरंग नाम इसे दे दिया है उसी ने उसे समुद्र से पृथक् कर दिया है। नाम रूप के नष्ट हो जाने पर वह समुद्र था, वही रह जाता है। सुमुद्र और तरंग के बीच कौन प्रभेद कर सकता है। अतएव यह समुदय जगत एक रूप हुआ। जितना भी पार्थक्य है नाम रूप के कारण वास्तव में 'मैं' अथवा 'तुम' नाम का कुछ नहीं है। सब एक है चाहे कहो सभी मैं हूं या सभी तुम हो किन्तु द्वैत ज्ञान बिल्कुल मिथ्या है।

६७६—वेदान्त तुम्हें बताता है कि यह संसार शीश महल के समान है और ये सब शरीर विभिन्न दर्पणों के तुल्य हैं, और तुम्हारी सच्ची आत्मा या निज स्वरूप का सब ओर ठीक वैसे ही प्रतिबिम्ब पड़ता है जैसे कि कुत्ता अपना प्रतिबिम्ब चारों ओर दिवालों में देख रहा था। इस तरह एक अनन्त आत्मा, एक अनन्त ईश, एक अनन्त शक्ति विभिन्न दर्पणों से अपना प्रतिबिम्ब डालती है। एक अनन्त राम ही इन सब शरीरों द्वारा प्रतिबिम्बत हो रहा है। मूर्ख लोग कुत्तों की तरह इस संसार में आते और कहते हैं "वह मनुष्य मुझे खा लेगा, अमुक आदमी मेरे टुकड़े-२ कर डालेगा, मुझे मिटा देगा" इस ईर्ष्या और भय का क्या कारण है? कुत्ते की अज्ञानता अथवा कुत्ते की सी अज्ञानता इस संसार के यावत्

द्वेष और भय का कारण है। कृपया इस संसार में शीश महल के मालिक की तरह आइये और आप शीश महल के मालिक होंगे। आप सम्पूर्ण संसार के स्वामी होंगे। आप जब अपने प्रतिद्वन्द्वि, भाईयों और शत्रुओं को आगे बढ़ते देखेंगे, आप को हर्ष होगा। कहीं भी किसी प्रकार का गौरव देखकर आपको प्रसन्नता होगी। आप इस संसार को स्वर्ग बना देंगे।

६७७—यदि सैंकड़ों सूर्य पृथ्वी पर गिर पड़ें, सैंकड़ों चन्द्र चूर हो जायं। एक के बाद एक ब्रह्माण्ड विनष्ट होते चले जायं तो तुम्हें कौन भयभीत कर सकता है। शिला की भांति अटल रहो। तुम अविनाशी हो फिर भय कैसा?

६७८—अनुभव करो कि वास्तविक आत्मा सारी चिन्ता, सारे भय से परे है, सब मुसीबतों और दुःखों से दूर है। कोई आपको हानि नहीं पहुँचा सकता, कोई आपको चोट नहीं पहुंचा सकता।

६७९—जो सम्मुख आये उसे भगवद्रूप मानो और उसके अनुरूप उसकी सेवा करो। संसार की चिन्ता में पड़ना तुम्हारा काम नहीं है।

६८०—मृत्यु दो बार नहीं आती और जब आने को होती है उससे पहले भी नहीं आती।

६८१—जब आप स्त्री में स्त्री न देखकर उस में अपने इष्टदेव, अपने प्रियतम प्यारे ईश्वर को देखते हैं तब निस्सन्देह आप स्वयं ईश्वर रूप हो जाते हैं।

७०७—ऐ तूफान! उठ और जोर शोर से आंधी पानी वर्षा कर। ओ आनन्द के महासागर पृथ्वी और आकाश को तोड़ फोड़कर एक कर दे। गम्भीर से गम्भीर गोता लगा, जिससे विचार और चिन्तायें छिन्न-भिन्न हो जायं, जिससे कहीं उनका पता ही न चले। आओ अपने हृदय से द्वैत की भावना को चुन-२ कर निकाल डालें, अपने असीम अस्तित्व की दीवालों को जड़ से ढहा दें, जिससे आनन्द का महासागर प्रत्यक्ष लहराने लगे। आओ, प्रेम की मादकता, जल्दी चढ़ो, प्रेम की मस्ती! तुरन्त हमें डुबो दो, विलम्ब करने से क्या प्रयोजन! मेरा मन आप एक पल एक निमिष के लिए इस दुनियादारी में फंसना नही चाहता तो इस मन को तो अपने में उस प्यारे प्रभु में डूब जाने दो, शीघ्रता करो? और उसे जलते हुए तन्दूर की अग्नि से बचालो बचालो। उस मैं और मेरे तू और तेरे के झमेले में आग लगा दो। आशाओं और आशंकाओं को उतार फेंकों। टुकडे.-२ करके गलादो द्वैत की भावना जड़ से उड़ा दो, हवा में काफूर हो जाये कहां सिर

कहां पैर, कहीं कुछ पता न रहे। रोटी नहीं, न सही। आश्रय और विश्राम नहीं न सही। पर मुझे चाहिये, प्रेम की, इस दिव्य प्रेम की प्यास और तड़प।

७१४—किसी से कुछ भी माँगो तो लोग तुम्हें देने के लिए तुम्हारे पीछे-२ फिरेंगे। मान न चाहोगे मान मिलेगा। स्वर्ग न चाहोगे, स्वर्ग के दूत तुम्हारे लिये विमान लेकर आवेंगे इतने पर भी तुम इन्हें स्वीकार न करोगे तो भगवान तुम्हें अपने हृदय से लगा लेंगे।

७१९—याद रक्खो-निश्चय, श्रद्धा, विश्वास और आत्म-स्वरूप की स्मृति ही तुम्हारी आत्मा की अनन्त शक्ति को प्रकट करने वाले चार महा द्वार हैं। इनकी शरण ग्रहण करो इनका आश्रय लो।

७२०—मूर्खता को छोड़ कर हर हालत में आनन्द का अनुभव करो। तुम्हें दुःख आ ही नहीं सकता। तुम दःख को ग्रहण करते हो इसीसे दुःख आता है। ग्रहण करना छोड़ दो फिर कोई भी दुःख तुम्हारे पास तक नहीं फटकेगा।

७२१—जिसके जीवन का लक्ष्य भगवान होते हैं और जो इस लक्ष्य को दृढ़ता से बनायें रखता है, जगत की विपत्तियां उसके मार्ग में रोड़े नहीं अटका सकतीं। भगवत कृपा से उसका पथ निष्कंटक हो जाता है। कहीं कांटे रहते

भी हैं तो उसका पैर उन पर टिकते, वे मखमल की तारों की तरह कोमल हो जाते हैं। कोई भी विघ्न उसके सामने आकर विघ्न रूप नहीं रहते वरन उल्टे उसके सहायक बन जाते हैं।

७३०—अस्त होते या उदय होते सूर्य की ओर चलिये, नदियों के तट पर विचरिये अथवा ऐसी जगह पर टहलिये जहां शीतल वायु अटखेलियां करती हो, आप अपने को प्रकृति के साथ एक ताल समस्त विश्व के साथ एक स्वर पायेंगे।

७३७—सब साधारण और असाधारण कामनाओं और अभिलाषाओं को दूर फेंक दो। ऊँ ऊँ रटो। यदि कुछ पल भी आप ऐसा करें तो सिर से पैर तक आका सारा अस्तित्व ज्योतिर्मय हो जाय। जब आप स्वयं ही प्रकाश हैं तो प्रकाश के लिये प्रार्थना क्यों? आप तुरन्त प्रकाश हो सकते हैं।

७६६—दूसरों के दोषों की चर्चा मत करो, चाहे दोष कितने ही बुरे क्यों न हों। किसी के दोषों की चर्चा करके तुम कभी उसका उपकार नहीं करते, बल्कि तुम उसे चोट ही पहुंचाते हो और साथ ही अपने को भी।

किसी की सहायता की अपेक्षा न रखो। क्या भगवान सारी मानवी सहायता की अपेक्षा अनन्त गुने अधिक नहीं हैं? भगवान में विश्वास रखो। सर्वदा उन्हीं का भरोसा रखो और

बस तुम्हारे पैर सदा ठीक मार्ग में पड़ेंगे, फिर कोई भी चीज तुम्हारा सामना न कर सकेगी।

७६८—यदि किसी व्यक्ति में सत्य, पवित्रता और निःस्वार्थता-ये तीन बातें विद्यमान हैं तो इस ब्रह्माण्ड में ऐसी कोई ताकत नहीं जो उसका बाल भी बांका कर सके। इन तीनों से सज्जित रहने पर मनुष्य सारे जगत का सामना कर सकता है।

७७६—जो व्यक्ति ऐसा अभ्यास बराबर करता रहेगा कि "मैं शरीर नहीं हूं" "मैं परिछिन्न मन, बुद्धि, अहंकार आदि नहीं हूं, किनतु सम्पूर्ण शरीरों का स्वामी हूं और सब शरीरों में मैं ही फैला हुआ हूँ" तो उसका अनुभव इस बात के प्रमाण में स्वयं साक्षी देगा कि हां भीतर बाहर सब वस्तुओं में केवल एक ही चेतन आत्मदेव कर रहा है, और एक ही आत्मा (जो वास्तव में मैं है) सम्पूर्ण जगत में फैला हुआ है।

८०१—न दुश्मन है कोई अपना,
न सज्जन ही हमारे हैं।
हमारे ख्याल फिरने से बने,
ये कुल पसारे हैं।

८१५—जब तुम दिव्य प्रेम के साथ चंडाल में, चोर

में, पापी में, अभ्यागत में और सबमें उस प्रभु के दर्शन करोगे तब तुम भगवान कृष्ण के प्रेम पात्र बन जाओगे।

८३१—करें हम किसकी पूजा,
और लगायें किसके चंदन हम।
सनम हम, दैर हम, बुतखाना
हम, बुत हम, विरहमन हम।।

८४१—इस शरीर को काष्ठ और लोहे के सामन (जड़) जानना बस केवल इतने ही ज्ञान मात्र से सबके स्वामी ब्रह्मरूप का बोध हो जाता है।

८५९—ईश्वर दर्शन के लिये व्याकुलता अधिक नहीं तीन ही दिन नहीं केवल २४ घंटे मन में टिकाओ कि उसका दर्शन होना ही चाहिये। अत्यन्त व्याकुल होकर ईश्वर को पुकार करो, तब देखो भला ईश्वर कैसे दर्शन नहीं देता?

८६१—त्याग और संयम के पूर्ण अभ्यास द्वारा मन और इन्द्रियों को वश कर लेने पर जब साधक का अन्तःकरण शुद्ध और पवित्र हो जाता है तब उसका मन ही गुरु बन जाता है। फिर उसके शुद्ध मन में उतपन्न हुई भाव तरंगें उसे कभी भी मार्ग भूलने नहीं देतीं और उसे शीघ्र ही उसके ध्येय के ओर ले जाती हैं।

८७४—मैं स्वयं प्रयत्न से साधन भजन करके ईश्वर

को अवश्य प्राप्त करूंगा ऐसा दृढ़ संकल्प करके निष्ठा के साथ ३-४ वर्ष तक रोज कम से कम प्रातःकाल और सायंकाल प्रत्येक बार दो घंटा आसन पर बैठकर जप ध्यान करते जाओ।

८८४—पहले अपने को जीत लो फिर सम्पूर्ण जगत तुम्हारे पैरों के नीचे आ जायेगा।

८८८—ब्रह्मदृष्टि को छोड़कर अन्य किसी भाव से किसी वस्तु को मत देखो। यदि ऐसा करोगे तो अन्याय और बुरा ही देखने में आवेगा।

८८९—जब तक तुम्हारे ऊपर कोई भी तुमसे भिन्न यहां तक कि ईश्वर भी यदि रहेंगे तब तक अभय अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती। हमें वही ईश्वर या ब्रह्म हो जाना होगा।

९००—"ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय ये त्रिविध बंधन जब दूर हो जाते हैं तभी आत्म-स्वरूप का प्रकाश होता है।" जब बंधन और मुक्ति रूप भ्रम हट जाता है तभी आत्मस्वरूप का प्रकाश होता है।

९१२—भूत या भविष्य में न कोई तुम्हारी अपेक्षा श्रेष्ठ ईश्वर था या है न होगा तुम्हीं वह अनन्त समुद्र हो। ईसा, बुद्ध प्रभृति तुम्हारी तरंगे मात्र हैं।

९२९—नानात्व दर्शन ही जगत में सबसे बड़ा पाप है। सभी को आत्मा-रूप में देखो तथा सभी से प्रेम करो। भेद-भाव को पूर्ण रूप से दूर कर दो।

९४६—किसी को चोर कहो और वह चोरी करने लगेगा यह एक निर्विवाद सच्चाई हैं।

९५०—रात भी उतनी प्यारी है जितना दिन, मृत्यु उतनी ही मधुर है जितना जीवन, ज्वर भी उतना ही अभिनन्दनी है जितना स्वास्थ्य, शत्रु उतने ही प्यारे है जितने मित्र।

९५४—यदि कोई मनुष्य पाँच दिन, उतना क्यों पांच मिनट भी बिना भविष्य का चिन्तन किये, बिना स्वर्ग नरक या अन्य किसी के सम्बन्ध में सोचे निःस्वार्थता से काम कर सके तो वह एक महापुरुष बन सकता है।

९५९—अपमान तो तुम्हारी आत्म ज्योति को जाग्रत करने वाला है। तुम्हारी विस्मृति को नष्ट करके स्मृति को ताजी बनाने वाला है। अपमान क्षोभ का नहीं, प्रसाद का जनक है। अपमान होते ही प्रसन्नता से खिल उठना चाहिये कि मेरी स्मृति ताजी करने के लिये साक्षात भगवान स्वयं आये हैं महान सौभाग्य है।

९६४—विषय की सत्ता इन्द्रियों से, इन्द्रियों की सत्ता मन से, मन की बुद्धि से और बुद्धि की ज्ञान स्वरूप आत्मा

से निश्चित होती है। अज्ञान का अनुभव भी ज्ञान ही है।

९७३—एकान्त स्थान में सुख पूर्वक बैठ कर परमात्मा में चित्त को स्थिर करके इस सब जगत् को मिथ्या समझकर ब्रह्ममय देखो।

९७८—बड़ा बुद्धिमान बनकर यह सब आत्मा ही है ऐसा कहने लगता है परन्तु किसी की बुरी बात भी सही नहीं जाती और अपनी स्तुति सुनने के लिए दौड़ता फिरता है और सुनकर प्रसन्न भी होता है ऐसा पुरुष भ्रष्ट नहीं तो क्या है।

९९२—तुम विचार पूर्वक सर्वथा अचिन्त्य तथा अभय रहने का अभ्यास बढ़ाओ और निरन्तर सावधान रह कर अहं में आत्मा और आत्मा में अहं को देखो, यही ज्ञान की सत्य उपासना है।

१०००—क्या तुम पूर्णतः निःस्वार्थ हो? यदि हो तो तुम अजेय हो।

१००५—मन से दुःखों का चिन्तन न करना ही दुःख निवारण की अचूक औषधि है।

१०१३—यदि लौकिक आसक्तियों और स्वार्थमयी इच्छाओं से आप अपने को आजाद कर लें, सो फिर सत्य पाने की बात ही क्या है? आप स्वयं इसी क्षण सत्य हैं।

१०२३—दृश्य में प्रीति न रहना यही असली वैराग्य है।

१०२९—परमार्थ तत्व के विषय में तीन पक्ष हैं।

(१) मुझ से भिन्न कुछ भी नहीं है।

(२) सब मैं ही हूं।

(३) सब वासुदेव ही है।

विचार से देखा जाये तो तीनों एक ही हैं।

१०३५—चार बातें सदा रखो—

(१) संसार को दुःख रूप समझना।

(२) उसे स्वपन्वत समझना

(३) उसे भगवान की माया समझना।

(४) उसे आत्मा का तरंग समझना।

१०४१—स्वप्न द्रष्टा तुम्हीं हो और यह संसार तुम्हारा ही स्वप्न है। बस जिस समय तुम्हें यह ज्ञान हो जायगा उसी समय तुम्हारी मुक्ति हो जायगी।

१०४७—साधु को फलाहारी, लवणत्यागी, दुग्धाहारी, या मौनी होकर नहीं रहना चाहिये। इससे व्यर्थ अभिमान हो जाता है।

१०५२—(१) ससार मिथ्या है, यह मन्द ज्ञान की धारणा है।

(२) संसार स्वपनवत् है यह मध्यम ज्ञानी की धारणा है।

(३) संसार का अत्यन्ताभाव है अर्थात् संसार कभी हुआ ही नहीं। यह उत्तम ज्ञानी की धारणा है।

१०६९—जिसका चित्त विषय शून्य और हृदय शान्त है, उसका सारा संसार मित्र हो जाता है और मुक्ति भी उसकी मुट्ठी में आ जाती है।

१०७७—जो जो पदार्थ दृष्य होवे हैं सो सो मिथ्या ही होवे हैं। जैसे शक्ति विषे हुआ रूप दृश्य होने से मिथ्या ही है।

१०७९—स्वप्न के पदार्थ में स्वप्न सच्चे प्रतीत होते हैं। स्वप्न में स्वप्नावस्था के पदार्थ झूठे हैं, यदि कोई यह जानना चाहे तो जान नहीं सकता। स्वप्न की सृष्टि थोड़ी देर की और विचित्र होती है। जब आदमी जागता है तब जानता है कि चारपाई पर पड़ा हूं, मेरे भीतर स्वप्न हुआ, स्वप्न के पदार्थ, देश-काल और सब क्रिया मेरे सिवाय और कुछ नहीं थीं। जैसे स्वप्न के पदार्थ झूठे हैं। इसी प्रकार तत्व ज्ञानी पुरुष जो अज्ञान रूपी निद्रा में से ज्ञान रूपी जाग्रत अवस्था को प्राप्त हुआ है वह ज्ञान के लक्ष्य से कहता है कि एक ब्रह्म के सिवाय और कुछ नहीं है।

१०८५—सारा दृष्य शून्यरूप है। इसका कोई आधार नहीं है। इस शून्याशून्य से विलक्षण इसका आधारभूत एक मात्र मैं ही अखण्ड परिपूर्ण तत्व हूं। मुझ से भिन्न और कुछ

है ही नहीं। ये अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड मुझ में ही अध्यस्त और इनका अधिष्ठान भूत मैं इनसे सर्वथा असंग हूं। यह अनुभव इतना स्पष्ट था मानों नेत्रों से दिख रहा हो। ऐसा जान पड़ा मानों मैं ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का सार्वभौम सम्राट् हूं।

११०३—चाहे मृत्यु सन्मुख आ रही हो, भूख व्याकुल कर रही हो, चलते पैरों में छाले पड़ गये हों, किसी वृक्ष के नीचे पड़ा हो। और जीवन दूभर हो गया हो, वुद्धि विचार करने में शिथिल पड़ गई तो भी उसके अन्दर से यही निर्भय ध्वनि निकलने लगती है कि सोऽहम् सोऽहम्। मुझे न कोई भय है और न मृत्यु है, न मुझे भूख है न प्यास है, प्रकृति की कोई भी व्यथा मुझे नष्ट नहीं कर सकती है। मैं वहीं हूं, मैं वहीं हूं।

१११६—दुःख में दुखी और सुखमें सुखी होने वाला लोहे के समान है। दुख में सुखी रहने वाला सोने के सदृश है। दुख सुख में बराबर रहने वाला रत्न के तुल्य है, और जो सुख दुख की भावना से परे है वह सच्चा सम्राट् है।

१११७— ईश्वर साक्षात्कार तब होगा, जब संसार की दृष्टि से प्रतीत होने वाले बड़े से बड़े वैरियों को भी क्षमा करने का स्वभाव बन जायेगा।

११२६—"मैं ज्योति हूं" मैं साक्षी हूं, "मैं सत्य हूं"

यह सब संसार नाम का नाटक (अभिनय) मेरे अनुशासन में होता है तो यही साक्षात्कार है।

११३६—अपना अनुभव करने के लिये अपने से भिन्न मत देखो। निज स्वरूप का बोध अभ्यास से सर्वत्याग से होता है। अपने आप में सन्तुष्ट होने से माना हुआ "मैं" मिट जाता है।

११४२—हर पदार्थ से अपने मोह को हटा लो और एक चीज पर, एक तथ्य पर, एक सत्य पर, अपने ईश्वरत्व पर सारा ध्यान केन्दिरत करो। तुरन्त ही तुम्हें आत्म साक्षात्कार होगा।

११४३—चित्त समता विचार से शीघ्र ही वश में होता है। हठ से शीघ्र नहीं, किन्तु धीरे धीरे साधा जाता है।

११५७—मैंने तो शरीर को भगवान के अर्पण कर दिया है। अब इसके भूख-प्यास, सुख-दुःख आदि धर्मों से मेरा क्या? अर्पण की हुई वस्तु में आसक्त होना महापाप है।

११६४—जिस प्रकार अपने ही रचित स्वप्न जगत को एक अज्ञानी भय प्रद दुःखदाई देखता है। उसी प्रकार वह ईश्वर रचित जगत को भी अपने अज्ञान के कारण ही दुःख, अन्धेर से भरा हुआ देखता है। ज्ञान होने पर वह न स्वप्न जगत को और न इस जाग्रत (मन) जगत को भयप्रद या भला

बुरा पाता है। जब वह (जीव) स्वरुप से सच्चिदानन्द व पूर्ण तृप्त है और यह संसार प्रतीति मात्र होते हुए भी सदउद्देश्य जनित है, फिर भले बुरे का प्रश्न अज्ञान में ही उत्पन्न हो सकता है।

११६९—अपने आप को न जानो तो जगत आ जाता है। अपने आप को पहचान लो तो जगत नहीं रहता। जगत का अस्तित्व आत्मा को न जानने तक ही है यों जगत का उपादान आत्मा ही है।

११७०—ज्ञान होने पर ही मालूम होता है कि ओ हो! आत्मा को ढकने वाली तो कोई वस्तु ही यहाँ नहीं थी।

११७६—हे राम जी! रज्जु में सर्प की भ्रान्ति को कल्पित रूप लिखा है। जैसे कल्पित सर्प रस्सी की हानि-लाभ नहीं कर सकता, तैसे ही कल्पित (मिथ्या) जगत् के व्यवहार व आकार अधिष्ठान ब्रह्म की हानि व लाभ नहीं करते। मन में फुरने से भय, शोक, चिन्ता भासता है। जब मन अफूर होता है सुषुप्ति में तो नहीं भासता। अधिक संसार भासता भी सत्य नहीं। इन्द्रजाली के रचे हुए पदार्थ प्रत्यक्ष भासते हैं पर वह यथार्थ में मिथ्या हैं। इसलिए उनके आकार व व्यवहार सब मिथ्या है तैसे ही इस सृष्टि को मिथ्या जानो।

११८६—उपासना आनन्द को तंग दिलवाला कभी

नहीं पा सकता, जिसका दिल बादशाह नहीं, वह क्या जाने भक्ति रस को। और बादशाह वह है जिसका अपने दिल के भीतर से एक लंगोटी के साथ भी दावा न हो।

११९०—ईश्वर जिस पर खुश होता है उसे नदी की सी दानशीलता, सूर्य की सी उदारता और पृथ्वी की सी सहनशीलता प्रदान करता है।

१२०६—मैं आत्मा का रूप हूं, मुझमें जन्म कहां? और मरण कहां? इनका चिन्तन भी हमारा कर्तव्य नहीं, इसी निश्चय का नाम मोक्ष है।

१२१३—मरे हुए शरीर को जैसे इच्छा या द्वेष नहीं होता, सुख-दुख नहीं होता, वैसे जो जीवित रहते हुए भी मृत समान जड़ भरत की भांति देहातीत रह सकता है वह संसार विजयी हुआ है और वह वास्तविक सुख को जानता है।

१२१५—भक्त के लक्षण—भक्त किसी से द्वेष न करे, किसी के प्रति वैरभाव न रखे, जीवमात्र से मैत्री रखे, जीवमात्र के प्रति करुणा का अभ्यास करे, ऐसा करने के लिये ममता छोड़े, अपना मिटाकर शून्यवत हो जाय, दुःख-सुख को समान माने कोई दोष करे तो क्षमा करे (यह जानकर कि स्वयं अपने दोषों के लिए संसार क्षमा का भूखा है) संतोषी रहे, अपने शुभ निश्चयों से कभी विचलित न रहे। मद, बुद्धि सहित सर्वस्व अर्पण करे। उससे लोगों को उद्वेग

नहीं होनी चाहिये, न लोग उससे डरें, वह स्वयं लोगों से न दुःख माने न डरे, मेरा भक्त हर्ष, शोक, भय आदि से मुक्त होता है, उसे किसी प्रकार की इच्छा नहीं होती, वह पवित्र होता है, कुशल होता है, बड़े बड़े आरम्भों को त्यागते हुए होता है, निश्चय में दृढ़ होते हुए भी शुभ और अशुभ परिणाम दोनों का वह त्याग करता है अर्थात् उसके बारे में निश्चित रहता है। उसके लिए शत्रु कौन और मित्र कौन? उसे मान क्या? और अपमान क्या? वह तो मौन धारण करके जो मिल जाय उससे संतोष रखकर एकाकी भांति विचरता हुआ सब स्थितियों में स्थिर होकर रहता है। इस भांति श्रद्धालु होकर चलने वाला मेरा भक्त है।

१२२५—शंकराचार्य ने कोई जत्था बनाया था? नहीं, बेचारा अकेला ही रहा। प्रत्येक प्राणी को अवश्य अकेले रहना चाहिये। अकेले खड़ा होना चाहिये। हर एक को अपने भीतर परमेश्वर को वोध और साक्षात्कार करना चाहिये।

१२३३—जिस प्रकार सर्प भ्रान्ति के विलीन होने पर रज्जु को देखते हो। उसी प्रकार जगत् एवं शरीर की भ्रान्ति के विलुप्त होने पर तुम ब्रह्म को ही देखोगे।

१२३४—जन्म मृत्यु न ते चित्तम् बंध मोक्षौ
शुभाशुभौ।

कथम् रोदिसी रे वत्स नामरूपम् न
तेन मे।

अर्थ—हे शिशु, तुम क्यों रोते हो? तुम में नाम रूप तो है ही नहीं?

न तो बंधन है और न मुक्ति न शुभ है न अशुभ! उठो, बद्धपरिकर वनो! मन तथा इन्द्रियों से संग्राम करो तथा अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में निवास करो। नाम रूप नहीं है, यह संसार तुममें नहीं है। यह तो संकल्प मात्र है।

१२५२—भगवान को अपने से भिन्न न मानो, यही प्रेम है।

१२५६—भगवान सदा मेरे साथ है। मैं सब भयों से मुक्त हूं। भगवान की उपस्थिति भय के अन्धकार को छिन्न-भिन्न कर देती है और मैं सदा प्रकाश में रहता हूं। जब मैं शांत भाव से कहता हूं भगवान ही एक मात्र मेरा आश्रय है, मैं किसी भी स्थिति में विचलित नहीं होऊंगा, तो बाहरी भय, प्रतिकूलतायें एवं कठिनाइयां तत्क्षण विलीन हो जाती हैं।

१२६९—जो पदार्थ चक्षु से जाने जाते हैं और श्रोत्र कर सुने जाते हैं, उन सब पदार्थों को मिथ्या निश्चय करके मुमुक्षु एक ब्रह्मात्मा की भावना करें तभी अधिकारी कृतकृत्य भाव को प्राप्त होता है।

१२७४—हे राम जी! एक कवच तुमसे कहता हूं, उसको धारण करके विचार तो, यद्यपि अनेक शस्त्रों की वर्षा हो तो भी तुझे दुःख नहीं होगा। "जो कुछ देखता, सुनता है" उसे सब ब्रह्म जान और बारम्बार यही भावना कर कि ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। जब ऐसी भावना दृढ़ करेगा तब कोई शस्त्र छेद न सकेगा यह ब्रह्म भावना ही कवच है। जब इसको तू धारेगा तब सुखी होगा।

१२८२—मृत्यु के लिए सदैव तैयार रहना ही निर्बाध सुखी रहने का उपाय है।

१२८८—आनन्दमय का अभ्यास—आनन्द परमात्मा का स्वरूप है। चारों तरफ बाहर-भीतर आनन्द ही आनन्द भरा हुआ है, सारे संसार में आनन्द छाया हुआ है। यदि ऐसा दिखलाई न दे तो वाणी से केवल कहते रहो और मन से मानते रहो। जल में डूब जाने गोता खा जाने के समान निरन्तर आनन्द ही में डूबा रहे और गोता लगाता रहे। रात दिन आनन्द ही में मग्न रहे। किसी की मृत्यु हो जाए, घर में आग लग जाय अथवा और भी कोई अनिष्ठ कार्य हो जाय तो भी आनन्द ही आनन्द कुछ भी केवल आनन्द हो आनन्द। इस प्रकार के अभ्यास करने से सम्पूर्ण दुःख एवं क्लेश नष्ट हो जाता है। वाणी से उच्चारण करे तो केवल आनन्द ही का, मन से मनन

करें तो आनन्द ही का तथा बुद्धि से विचार करे तो आनन्द ही का, परन्तु यदि ऐसी प्रतीति न हो तो कल्पित रूप से ही आनन्द का अनुभव करो। इसका भी फल बहुत अच्छा होता है। ऐसा करते समय आगे चल कर नित्य आनन्द की प्राप्ति हो जाती है। इस साधन को सब कर सकते हैं। हम लोगों को यह निश्चय कर लेना चाहिये कि हम सब एक आनन्द ही हैं। ऐसा निश्चय कर लेने से आनन्द ही आनन्द हो जायगा।

१२८९—भगवान् की मूर्ति या चित्र को सामने रख कर तथा आंखें खोलकर उनके नेत्रों से अपने नेत्र मिलावे। त्राटक की भांति आंखें खोल कर उसमें ध्यान लगावे, ध्यान के समय यह विश्वास रखे कि इसमें भगवान प्रकट होंगे। विश्वास ऐसा ध्यान करने पर इससे भी भगवान मिल जाते हैं। यह भी भगवत् प्राप्ति का सुगम साधन है। वास्तविक रूप में नितान्त निराकार और समस्त सांसारिक विषयों से निलिप्त हूँ, इसी तरह अपने निलिप्त रूप से संसार के सब भूतों का आत्मा भी मैं ही हूं।

१२९४—प्रसन्नता पूर्वक अपमान सहन करने और नम्रता धारण करने से अभिमान की निवृत्ति होती है।

१३३२—जो मनुष्य सुन के, छू के, देख के, खा के, सूंघ के, न प्रसन्न हो, न उदास हो उसे जितेन्द्रिय और शांत कहते है।

१३३५—जो जाग्रत में सुषुप्ति के समान रहता है तथा जिसके जाग्रत नहीं रही यानि संसार सत्य नहीं रहा तथा जिसका ज्ञान संसारी वासना से रहित है वह जीवन-मुक्त है।

१३३६—साधु पुरुषों द्वारा सत्कार किये जाने पर और दुष्ट जनों से पीड़ित होने पर भी जिस के चित्त का समान भाव रहता है वह जीवन मुक्त है।

१३३७—बीती हुई को याद न करना, भविष्य की चिन्ता न करना और वर्तमान में प्राप्त हुए सुख दुःखादि में उदासीनता ये जीवन मुक्त पुरुष के लक्षण हैं।

१३३८—क्रिया के नाश से चिन्ता का नाश होता है, चिन्ता के नाश से वासना का क्षय होता है और वासना का नाश ही मोक्ष है यही जीवन मुक्ति है।

१३४०—यदि कोई असली दुष्ट आ जाये तो भी ऐसी भावना करो कि यह परमात्मा है। वह दुष्ट होगा भी तो संत हो जाएगा। देखो सृष्टि क्या है, एक आईना है, तुम जैसा होओगे वैसे ही सामने की सृष्टि में तुम्हारा प्रतिबिम्ब दिखाई देगा। जैसी हमारी दृष्टि वैसा ही सृष्टि का रूप। इसलिए ऐसी कल्पना करो कि यह सृष्टि अच्छी है, पवित्र है। अपनी मामूली क्रियाओं में भी ऐसी भावना का संचार करो फिर देखो क्या चमत्कार होता है।

१३४२—जहां आपने देह की आसक्ति छोड़ दी कि तुरन्त सम्राट हो जायेंगे। सारा सामर्थ्य आपके हाथ में आएगा। कोई भी आप पर हुक्म नहीं चला सकता।

१३७२—हमारे जीवन का सबसे सुखकर क्षण वही होगा जब हम स्वयं को बिल्कूल भूल जायेंगे। जीवन का समस्त रहस्य है निर्भीक होना। तुम्हारा क्या होगा। इसका भय छोड़ दो। किसी के ऊपर निर्भर मत रहो। जब तुम दूसरे की सहायता की आशा छोड़ दोगे तभी तुम मुक्त हो जाओगे।

१४०५—आकाश के नीले रंग के समान जो यह भ्रमदायक संसार प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। इसके अत्यन्त अभाव की प्रतीति यदि चित्त में दृढ़ प्रकार से जम जावे तब समझना चाहिए कि अब ब्रह्म के रूप का ज्ञान हुआ और किसी प्रकार से नहीं हो सकता क्योंकि दृश्य के अत्यन्त अभाव को छोड़कर कल्याण का और कोई उपाय नहीं।

१४२७—तमाम दुनियाँ है खेल मेरा,
मैं खेल सब को खिला रहा हूं।
किसी को गम में रुला रहा हूँ,
किसी को बेखुद बना रहा हूं।
कभी मैं दिन को निकालूं सूरज,
कभी मैं शब को दिखाऊ तारे।
ये जोर मेरा है दोनो पाँवों को,

मिसले फिरकी फिरा रहा हूं।
अक्स है सदमा भले बुरे का,
हो कौन तुम और कहां से आये।
खुशी है मेरी मैं खेल अपना,
बना बना के मिटा रहा हूं।
फिरो हो रूये जमीं पे यारो,
तलाश मेरी में मारे मारे।
अमल करो तुम दिलों में देखो,
मैं नहने अकरब सुना रहा हूं।
किसी के गर्दन में तोके लानत,
किसी के सिर पर है ताजे रहमत।
किसी को ऊपर बुला रहा हूँ,
किसी को नीचे गिरा रहा हूँ।।